गुरु गोबिन्द सिंह का साहित्य-कर्म एवं उसकी सामाजिक उपादेयता

डॉ. नीतू गुप्ता

रीतिकालीन साहित्य श्रृंगार एवं कला का पर्याय माना जाता है। इस काल में लगभग सभी कवि अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने एवं निज पांडित्य-प्रदर्शन की लालसा हेतु काव्यांगों पर विस्तृत विवेचन करते रहे। जिसके चलते श्रृंगार इन्हें ऐसा मुख्य विषय लगने लगा जिसके अन्तर्गत दोनों प्रयोजन सिद्ध होते प्रतीत हुए। परिणाम स्वरूप श्रृंगार के वर्णनों की ऐसी बाढ़ आई जिसमें सभी कवि सहज एवं प्रसन्न चित्त से डूबते- उतरते रहे।

राजनीति दृष्टि से रीतिकाल वह समय था जब केन्द्र में मुगल शासन स्थापित था तथा छोटे-छोटे राज्यों पर सामंतों एवं नवाबों का बोल-बाला था। सम्पूर्ण देश की जनता बुरे संकट के दौर से गुजर रही थी, हिन्दुओं के मन्दिर नष्ट किए जा रहे थे, उन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए भी विवश किया जाता था, इतना ही नहीं प्रतिदिन उन पर नए-नए कर लगाकर उनसे धन की भी वसूली की जाती थी। ऐसे समय में भोग-विलासी सामंतों की कामुकता में वृद्धि के दृष्टिकोण से सभी दरबारी कवि नायिकाओं के अलग-अलग रूप, वृत्ति और प्रकार को पूरे मनोयोग से गिनाने में लगे हुए थे। केशवदास ने तो श्रृंगार को केवल रसों का नायक मात्र माना था।

"नवहु रस' को भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।

सबको केसवदास हरि, नायक है सिंगार"

किन्तु देव कवि ने तो मूल रस श्रृंगार ही माना है बाकि वीर और शान्त जैसे मुख्य रसों को भी श्रृंगार में ही विलीन करके रीतिकालीन साहित्य में अपनी मौलिकता में विशिष्ट उद्भावना की है।

भूलि कहत नव रस. सुकवि, सकल मूल श्रृंगार।"

" इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट मानना है. कि-" श्रृंगार के वर्णनों को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रूचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"

अधिकांश रीतिकालीन कवि अपनी आजीविका की प्राप्ति हेतु एवं कवि-कर्म की सिद्धि हेतु एक राजा से दूसरे राजा के आश्रय में घूमते रहते थे और जहाँ कहीं उनके उद्देश्य की पूर्ति होती थी वहीं रहकर उसकी रूचि के अनुसार ये अपनी काव्य-रचना का विषय सुनिश्चित करते थे।

रीतिकाल के सभी महत्त्वपूर्ण कवि चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव आदि सभी औरंगजेब के समकालीन थे किन्तु यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि राजदरबारों से इतने गहरे ढंग से जुड़े रहने के बावजूद किसी भी कवि ने तत्कालीन युग की राजनीतिक स्थिति का वर्णन अपने काव्य में नहीं किया। इस संबंध में डॉ. महीप सिंह जी का मत स्पष्ट है कि "सन् 1680 ई। में औरंगजेब ने जयपुर के हिन्दू

मंदिर तुड़वा दिए परन्तु जयपुर के महाराजा रामसिंह के दरबारी कवि कुलपति मिश्र ने अपनी किसी रचना में उसके विरुद्ध रोष प्रकट नहीं किया।" इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन दरबारी काव्य में राजनीतिक विषमताओं एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों के प्रति स्वीकारोक्ति का भाव था।

तत्कालीन युग की राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को पृष्ठभूमि में रखने के पश्चात् ही गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य कर्म एवं अवदान का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। सिक्ख गुरुओं की यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि सभी सिक्ख गुरुओं ने समाज के प्रति अपने दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है वहीं सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह एक कुशल योद्धा, राष्ट्र-प्रेमी एवं त्यागी संत के रूप में विख्यात हैं किन्तु एक महान योद्धा एवं राष्ट्र-भक्त अनेक भाषाओं का विद्वान एवं ब्रजभाषा का एक महान कवि भी हो सकता है, इस तथ्य की जानकारी केवल उनके द्वारा विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का ब्रजभाषा, पंजाबी और फारसी भाषाओं पर समान अधिकार था। उन्होंने वार श्री भगौती जी दी पंजाबी भाषा में लिखा। औरंगजेब को लिखे पद्मबद्ध पत्र जफरनामा की भाषा फारसी है। इसके अतिरिक्त उनके बहुचर्चित ग्रंथ चंडी चरित्र उक्ति विलास, चंडी चरित्र (द्वितीय), बचित्र नाटक (आत्मकथा) जापु, अकाल स्तुति आदि की भाषा ब्रजभाषा है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि अनेक भाषाओं में रचना करने का एक मुख्य कारण यह भी रहा कि सभी भाषा-भाषी समुदाय के लोगों को अपने साथ जोड़ा जा सके। गुरु गोबिन्द सिंह का पदार्पण ऐसे समाज में हुआ जब उत्तर भारत-विशेषतया पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की साधारण जनता मुगल साम्राज्य की अनीतियों के कारण पूर्णतया असहाय एवं असुरक्षित होकर रह गई थी। उसके भीतर अपने प्रतीक चिन्हों की रक्षा करना तो दूर अपनी जमीनों की रक्षा एवं घर की सुरक्षा करना भी दूभर हो चला था। मुगल शासन के समक्ष कहने को तो अनेक राजा, नवाब और सामंत शक्तिशाली हो चले थे बावजूद इसके उनकी वीर गाथाएँ केवल साहित्य एवं शयन कक्ष तक ही सीमित होकर रह गई थी। सभी राजदरबारों में साहित्य कला अपने चरम पर थी किन्तु उसका कौशल श्रृंगार एवं दरबारदारी को ही विकसित कर रहा था, साधारण जनता के लिए ये कला पूर्णतया अनावश्यक एवं अनुपयोगी थी। ऐसे वातावरण में यदि कोई आवश्यकता थी तो ऐसे साहित्य की जिसमें भक्ति की महत्ता आचरण की शुद्धता, कर्म की पराकाष्ठा एवं वीरत्व का समायोजन हो। साथ ही साथ आत्मगौरव, आत्मविश्वास तथा सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना का आह्वान हो। यह महत्त्वपूर्ण कार्य गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य द्वारा ही संभव हो पाया। उन्होंने सामान्य जन भाषा में प्राचीन साहित्य को आधार बनाकर एक ऐसे साहित्य की रचना की जिसमें साधारण जनता स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस कर सके।

राम और कृष्ण की गाथाएँ तो लंबे समय से साहित्य का विषय बनकर जनमानस पर अपनी पैठ बना चुकी थी। किन्तु शिव और शक्ति को साहित्य के नायक के रूप में अथवा लोक रक्षक के रूप में उतना स्थान नहीं मिल पाया था जितनी लोकप्रियता विष्णु के अवतारों को प्राप्त हुई थी। हिंदी साहित्य में एक

स्थान पर तुलसीदास राम को शिव का भक्त बनाकर अथवा शिव को राम के प्रिय के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं-

"सिव द्रोही मम दास कहावा

सो नर मोहि सपनेहुँ नहिं भावा।"

तुलसीदास के पश्चात् ब्रजभाषा में इस कार्य को बढ़ावा दिया गुरु गोबिन्द सिंह ने। उन्होंने अन्यायी शासन के विरुद्ध जन-साधारण के मनोबल को ऊँचा उठाने हेतु शक्ति का आह्वान किया। इस संबंध में डॉ. ओमप्रकाश का यह कथन उपयुक्त है कि "संस्कृत भाषा सर्वजन-सुलभ नहीं रह गई थी, इसलिए दशमेश ने उस सप्तशती का राष्ट्रभाषा-करण कर दिया और क्योंकि यह काव्य पारायण के निमित्त भी होता है. इसलिए इसकी पद्य संख्या मूल (सात सौ) की तिहाई अर्थात् दो सौ तैंतीस कर दी।"

गुरु गोबिन्द सिंह के सम्मुख यह भाव स्पष्ट था कि यदि लक्ष्य को बड़ा रखना है तो प्रयास भी उतने ही ऊँचे स्तर पर जाकर करना होगा। इसलिए उन्होंने साहित्य को माध्यम बनाया, जिससे साधारण जन समूह को अपने साथ जोड़ा जा सके। एक तरफ वे जितनी तीव्र गति से सैन्य का संगठन कर रहे थे उतनी ही तीव्रता से साहित्य का निर्माण कार्य भी चल रहा था। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे साहित्य की समाज सापेक्षता से अनभिज्ञ नहीं थे। उनकी रचना चंडी चरित्र उक्ति विलास इसी बात का स्पष्ट प्रमाण है जिसमें कवि ने जहाँ एक ओर चण्डी देवी के चरित्र का गान किया है, वहाँ उसने विलक्षण उक्तियों का प्रयोग कर आनन्द-लाभ भी किया है। इस संबंध में एक स्थान पर गुरु जी स्वयं उल्लेख करते हैं-

"एक ते एक रसाल भयो नख तें सिख लौं उपमा सुभली है।" इसका अभिप्राय है कि रचना में आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। तथा सभी उपमाएँ एक से बढ़कर एक मधुर और आकर्षक हैं जो सहज ही पाठक को आनंद और प्रेरणा दोनों ही प्रदान करेंगी।

गुरु गोबिन्द के काव्य की सार्थकता इसी तथ्य में विहित है कि एक ओर ये भक्तिकाव्य है, तथा दूसरी तरफ इसमें वीरता एवं ओज का भाव कूट-कूटकर भरा है। वस्तुतः काव्य में प्रतिपादित भक्ति कर्तव्य पालन का सोपान है। इसीलिए कवि ने युद्ध क्षेत्र में रक्त रंजित होने की तुलना सरस्वती नदी में स्थान करने से की है, साथ ही साथ इसका प्रयोजन पूर्वजन्मों के अथवा पूर्वजों के किए कर्मों से मुक्ति बताते हुए कहते हैं कि "सु मनो भट सारसुती-तट न्हात हैं पूरब पाप उतारन को।"

अनेक कविताओं में पूर्वजों का एवं अतीत का गौरवशाली वर्णन किया गया मिलता हैं किन्तु यहाँ पूर्वजन्म एवं पूर्वज दोनों के लिए हुए कर्मों का उल्लेख किया गया है। साथ ही युद्ध की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए उसे सरस्वती नदी में स्नान करने के समान बताया गया है। गुरु जी का मानना है कि गंगा और यमुना में स्नान करने से केवल वर्तमान जीवन के पाप ही धुल पाएँगे लेकिन युद्ध में अपना रक्त बहाने से पूर्वजन्मों के और यदि पूर्वजों ने देश को गुलाम बनाने में जो भी भागीदारी की हो अर्थात् कहीं

बाहरी शक्तियों से समझौते का रास्ता अपनाया हो तो उनके वंशज होने के नाते उनके पापों का प्रायश्चित भी हमें ही करना है।

तत्कालीन समाज में जनता स्वयं को पूर्णतया विवश एवं असहाय मानकर बेचारगी का जीवन जीने को विवश थी। ऐसे समय में जनता के भीतर यह विश्वास जगाना बहुत ही कठिन कार्य था कि अत्यंत ताकतवर शत्रु का विनाश भी संभव है यदि सभी जन, समूह में आकर एकजुट हो जाएँ। इसी आधार पर गुरु जी ने जन-साधारण में प्रचलित भागवत की कथा को लोक भाषा में रूपांतरित करते हुए उसको धर्मयुद्ध बतलाया-

"दसम कथा भागौत की भाषा करी बनाइ।

अउर वासना कछु नहीं, धरम जुद्ध के चाइ।"

समाज में हो रहे अत्याचार एवं अनीति के विरोध में जनता को एकजुट करने का सबसे सटीक उपाय यही है कि जनक्रांति को धर्मयुद्ध में परिवर्तित कर दिया जाए। यह सर्वविदित है कि जब भी कभी देवताओं पर अत्याचार हुआ और आसुरी शक्तियाँ बलशाली होकर अत्यधिक उत्पात मचाने लगी तभी ब्रह्मा जी को साथ लेकर सभी यक्ष, गंधर्व और देवतादि, देवी की शरण में जाकर अपनी रक्षा की याचना करते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि अन्याय पूर्ण आचरण का अन्त शक्ति द्वारा ही हो सकता है। चंडी चरित्र में अनीतिकारी असुरों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने और उन पर विजय पाने में जनता के सम्मुख यही उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। काव्य का मुख्य उद्देश्य युद्ध को सर्वाधिक महत्त्व देना रहा है, किन्तु यह युद्ध केवल देवताओं एवं दैत्यों के बीच लड़ा जाने वाला मायावी युद्ध नहीं है बल्कि इसमें तत्कालीन लोक जीवन से गृहीत उपमानों को मुख्य तौर पर सम्मिलित किया गया है। इसके अन्तर्गत एक स्थान पर वर्णन किया गया मिलता है कि दैत्यों ने देवताओं के खेतों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया है और भोले-भाले निरीह देवता इधर से उधर मारे-मारे फिर रहे हैं-

"खेत जीति दैतन लियी, गये देवते भागि।

इहै विचार मन विषै, लेहि सिवा तें राजि।।"

यहाँ सीधे तौर पर खेत का उदाहरण प्रस्तुत करके बेसहारा किसानों की अवस्था और समकालीन शासकों की क्रूराती का वर्णन किया गया है, जिससे जबरन अधिकार छीनने की प्रवृत्ति को उजागर करना ही कवि का मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है। जिस प्रकार देवगण अपना अधिकार छिन जाने पर शक्ति की शरण में गए उसी प्रकार उस युग के किसानों और मजदूरों को भी अपने अधिकार से वंचित कर दिए जाने पर जनक्रांति अथवा धर्मयुद्ध का आश्रय लेना होगा।

इसी प्रकार साधारण जनता के भीतर ओज का संचार करने के लिए कवि ने देवी की तुलना कहीं धोबी से तो कहीं दर्जी से की है जिससे साधारण जनता इस दैवीय संग्राम को केवल अत्यधिक कष्टदायक न समझकर सामान्य जीवन में बहुत ही सरल एवं जमीनी स्तर पर लड़ा जाने वाला युद्ध समझे। क्योंकि यह बहुत ही असाधारण सी बात है कि देवी कभी भी दैत्य को धोबी के समान पटक-पटकर ऐसे नहीं पछाड़ेंगी किन्तु यह कवि की विशेषता है कि यदि धोबी या तेली जब भी इस काव्य को पढ़ें तो उन्हें अपने भीतर की शक्ति का अहसास हो एवं वे जब भी युद्ध में प्रवृत्त हों तभी उन्हें यह कार्य बहुत ही सरल प्रतीत हो। सामान्य जनता के भीतर जोश का संचार करने का यह प्रयास सचमुच गुरु गोबिन्द सिंह जी की मौलिक उद्भावना मानी जा सकती है।

भक्त और साहित्यकार दोनों कल्पनाजीवी होते हैं। एक अपने मानस में कल्पना द्वारा ईश्वर की मूर्ति को साकार करता है तो दूसरा कलम द्वारा उस कल्पना को काव्य के रूप में प्रस्तुत करता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यदि ये दोनों एक ही बिन्दु पर आकर मिल जाए तो उस साहित्य में ईश्वरीयता के नए आयाम देखने को मिलते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह इस दृष्टि से एक भक्त भी हैं और साहित्यकार भी साथ ही तत्कालीन समाज में व्याप्त मानसिकता से वे भली-भाँति परिचित थे जहाँ स्त्री को केवल मनोरंजन या उपभोग की वस्तु समझा जाता था। ऐसे समय में गुरु जी ने ईश्वर की संकल्पना स्त्री रूप में की है। हालाँकि चे जानते थे कि राम और कृष्ण की छवि जन-मानस में लोक रक्षक और लोकरंजक के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी, बावजूद इसके उन्होंने दुर्गा सप्तशती को आधार बनाकर चण्डी चरित्र उक्ति विलास, चण्डी चरित्र (द्वितीय). वार श्री भगौती जी दी आदि ऐसे ग्रन्थों की रचना की जिनमें नारी, शक्ति का रूप धारण करके महाबलशाली दैत्यों का संहार करती हैं। आगे कवि यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि इतना भयंकर युद्ध देवी किसी शासन की स्थापना अथवा राज्य विस्तार के लिए नहीं करती बल्कि असहाय और निरीह देवताओं के साथ हो रहे अत्याचार को मिटाने के लिए करती हैं, उसके पश्चात् वह सभी दूसरे देशों के राजाओं को इंद्र के अधीन बनाकर देवी भवानी, बागम्बर धारी शिव के पास वापस लौट जाती हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य केवल साधु संतों एवं दीन-दुखियों का हित साधन था न कि समस्त सृष्टि पर शासन करना-

देस देस के नरेस डारे हैं सुरक्ष पाँव,

कीनौ अभिषेक सुर मंडल सिचारिकै।

इहाँ भई गुपति, प्रकट जाइ तहाँ भई,

जहाँ बैठे हर हरि अंबर के डारिकै।"

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन जन हित के कार्यों में ही समर्पित कर दिया। उन्हें यह कतई स्वीकार नहीं था कि सिख सम्प्रदाय के अनुयायी गद्दी को लेकर आपस में कलह करें। इसी आधार

पर उन्होंने गद्दी पर किसी गुरु की स्थापना न करके गुरु ग्रंथ साहिब की ही स्थापना की और ये नियम बना दिया कि सिख सम्प्रदाय को मानने वाले सभी शिष्य गुरु ग्रन्थ साहिब के समक्ष अपना शीश नवाएँगे। इस संबंध में डॉ. रामचन्द्र वर्मा जी का कथन दृष्टव्य है-"वे गुरु नानक देव की परंपरा को आगे बढ़ाकर चरमोत्कर्ष प्रदान करने वाले तो थे ही, उसमें आ गई बुराइयों को भी इन्होंने 'गुरु ग्रन्थ साहिब को ईश्वरत्व एवं गुरुत्व प्रदान करके, पनप रही महन्तशाही (मसनदशाही) और छोटी-बड़ी गद्दीशाहियों को अवैध घोषित करके संशोधित, परिष्कृत एवं (बुराइयों को) दूर किया।" गुरु जी को अनेक आलोचकों ने 'महान् सन्त-सिपाही' कहकर परिभाषित किया है। किन्तु इसके अतिरिक्त उनका विलक्षण कवि एवं साहित्यकार का रूप भी अधिक मुखर होकर हमारे सामने आता है। गुरु जी ने अपना समस्त जीवन पूर्णतया समाज को ही समर्पित कर दिया था। वे तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों एवं अन्यायी शासन सत्ता से विक्षुब्ध थे इसलिए वे अपने साहित्य एवं कर्म दोनों में ही युद्ध की अनिवार्यता को घाषित करते हैं और माँ पार्वती से ये वर माँगते हैं कि उनका समस्त जीवन युद्ध करते हुए एवं अन्यायी शासक का दमन करते हुए ही व्यतीत हो। चाहे कोई भी परिस्थिति आए पर वे अपने दृढ़ निश्चय से कभी भी पीछे न हटें और अपनी जीत को सुनिश्चित करें-

"बर देहि सिवा नित मोहि इहै.

सुभ कर्मन तें कबहुँ न टरौं।

न डरौं अरि सौ जब जाइ लरौं.

निसचौ करि आवनि जीत करौं।"